श्रीमाताजी

मातृवाणी

(चौथा भाग)

M-16/2
श्री अरविन्द स्वाध्याय ...
संख्या 6...
श्रीनगर (कश्मीर)

[illegible]

श्रीमाताजी

...रविन्द स्वाध्याय...
संख्या 6
श्रीनगर (कश्मीर)

मातृवाणी

(चौथा भाग)

श्रीअरविन्द आश्रम
पांडिचेरी

प्रकाशक
श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी

प्रथम संस्करण २०००

मुद्रक
श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी

683-55-8-2000-Sirpur Paper

मातृवाणी

[illegible]

[illegible] [illegible], [illegible]

मुद्रक

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]

[illegible] Paper

१

शांति और समता

एकमात्र अचंचल, सुदृढ़ और अटूट शांतिके द्वारा ही सच्ची विजय प्राप्त की जा सकती है।

*

अचंचलता, स्थिर और केंद्रीभूत शक्ति, इतनी स्थिर कि कोई भी चीज उसे हिला न सके–बस यही है सर्वांगपूर्ण सिद्धिका अनिवार्य आधार।

*

एकमात्र शांति के अंदर ही ज्ञान और शक्ति कार्यकर होते हैं।

*

शांति और आंतर नीरवतामें ही तुम भगवान्‌की सतत उपस्थितिसे अधिकाधिक सचेतन हो सकते हो।

*

अचंचलताके अंदर ही तुम यह अनुभव करोगे कि दिव्य शक्ति, साहाय्य और संरक्षण सदा तुम्हारे साथ हैं।

*

भगवान्‌की विशाल शांतिको अपने अंदर संपूर्ण रूपमें प्रवेश करने दो और उसीको अपनी सारी गतिविधियोंका परिचालन करने दो।

*

आंतरिक विश्रामको बढ़ाओ; वह विश्राम ऐसा बन जाय जो बराबर ही, यहांतक कि घोर कर्मके बीच भी, बना रहे और इतना दृढ़ हो जाय कि कोई भी चीज उसे हिलानेमें समर्थ न हो—तब तुम दिव्य अभिव्यक्तिके एक पूर्ण यंत्र बन जाओगे।

*

सदा स्थिर और शांत बने रहनेके लिये खूब सावधान रहो और अपनी सत्ताके अंदर एक सर्वांगीण समताको अधिकाधिक पूर्ण रूपमें स्थापित होने दो। अपने मनको अत्यधिक सक्रिय मत होने दो और न उसे उपप्लवमें ही रहने दो। चीजोंके बाह्य रूपोंको देखकर ही झट कोई निर्णय मत कर डालो; सदा पूरा समय लो, एकाग्र होओ और केवल स्थिरताके ही अंदर फैसला करो।

*

समस्त सत्तामें सत्य-चैतन्यको परिव्याप्त हो जाना होगा, उसे हमारी समस्त गतिविधियोंको अधिकृत कर लेना होगा और हमारे चंचल स्थूल मनको शांत-स्थिर कर देना होगा। ये ही अभिव्यक्तिकी आरंभिक शर्तें हैं।

*

ध्यानके द्वारा मनुष्य जो अचंचल मन प्राप्त करता है वह निश्चय ही अल्पस्थायी होता है, क्योंकि जैसे ही तुम ध्यानसे उठते हो वैसे ही तुम मनकी अचंचलतासे भी बाहर निकल आते हो। प्राणमें, शरीरमें तथा मनमें सच्ची, स्थायी अचंचलता भगवान्के प्रति पूर्ण आत्मोत्सर्ग करनेसे ही आती है; कारण, जब तुम किसी चीजको भी, यहांतक कि स्वयं अपनेको भी, 'अपना' नहीं मानते, जब प्रत्येक चीज–तुम्हारा शरीर, इंद्रियानुभव, हृद्गत बोध और

विचारतक–भगवान्‌की हो जाती है, तब स्वयं भगवान् ही सब चीजोंका संपूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं और तब तुम्हारे लिये चिंता करनेकी कोई बात ही नहीं रह जाती।

*

जब हम क्षुब्ध नहीं होते केवल तभी हम सर्वदा उचित कार्य उचित समयपर और उचित ढंगसे कर सकते हैं।

*

सचमुच ही शांतिकी बेहद आवश्यकता है–शांतिके बिना मामूली बात भी तुरत बड़ा बतंगड़ बन जाती है।

*

शांतिको अधिकाधिक सतत और सर्वांगीण रूपमें अपने अंदर अभिव्यक्त होने दो।

२

सच्चाई और श्रद्धा

सच्चाई दिव्य द्वारोंको खोलनेकी कुंजी है।

*

प्रत्येक व्यक्तिको अवसर दिया गया है और सबके लिये साहाय्य भी मौजूद है–पर प्रत्येक आदमी अपनी सच्चाईके अनुपातमें ही लाभ प्राप्त करता है।

*

सच्ची पुकारें अवश्य पहुंचती हैं और उत्तर भी प्राप्त करती हैं।

*

सब कुछ निर्भर करता है व्यक्तिके मनोभाव-पर और उसके दृष्टिकोणकी सच्चाईपर।

*

पूर्ण सच्चाईके सबसे बड़े शत्रु हैं अभिरुचियां (चाहे मनकी हों या प्राणकी या शरीरकी) और पूर्वनिर्धारित भावनाएं। इन्हीं बाधाओंको जीतना होगा।

*

जो लोग सच्चे हैं उनकी मैं सहायता कर सकती हूं और उन्हें आसानीसे भगवान्‌की ओर मोड़ सकती

हूं। परंतु जहां सच्चाई नहीं है वहां मैं बहुत कम ही कार्य कर पाती हूं। तब, जैसा कि मैं पहले तुम्हें बता चुकी हूं, हमें धैर्य रखना होता है और स्थितिके सुधरनेकी प्रतीक्षा करनी होती है। परंतु निश्चय ही कोई कारण नहीं कि तुम क्षुब्ध हो जाओ, तुम्हारा क्षोभ स्थितिके सुधरनेमें किसी तरह भी सहायता नहीं करेगा। तुम अनुभवसे जानते हो कि विक्षोभ और अंधकारसे बाहर निकलनेका एक ही रास्ता है; वह है खूब अचंचल और शांत बने रहना, समतामें अचल बने रहना और तूफानको गुजर जाने देना। इन तुच्छ झगड़ों और कठिनाइयोंसे ऊपर उठो और पुनः मेरे प्रेमकी ज्योति और शक्तिमें, जो सदा तुम्हारे साथ हैं, जाग्रत् हो जाओ।

*

प्रत्येक मुहूर्त अपनी शक्तिभर उत्तम व्यवहार करना और फलको भगवान्‌के निर्णयपर छोड़ देना ही शांति, प्रसन्नता, शक्ति, उन्नति और अंतिम पूर्णता प्राप्त करनेका सुनिश्चित पथ है।

*

ऐसी सुदृढ़ श्रद्धाका होना अच्छा है—यह तुम्हारे पथको अधिक आसान और छोटा बना देगी।

*

ठीक जब अनिष्ठाकी भावना चारों ओर फैल रही हो, तभी हमें वास्तविक रूपमें निष्ठावान् बने रहना चाहिये तथा तूफानसे अछूते और अविचलित रहना चाहिये।

*

हमें भगवान्की विजयमें पूर्ण विश्वास होना चाहिये। तब इस व्यापक विजयमें उन सबकी व्यक्तिगत विजय भी शामिल हो जायगी जो निष्ठावान् और विश्वासपूर्ण बने रहेंगे।

श्री अरविन्द स्वाध्याय मंडल
संख्या ....

३

धैर्य और नम्रता

नम्रता और सच्चाई सबसे उत्तम संरक्षण हैं। इनके बिना प्रत्येक पग खतरेसे भरा होता है; इनके होनेपर विजय सुनिश्चित है।

*

यथार्थ, निष्कपट नम्रतामें हम सुरक्षित रहते हैं–यह नम्रता अहंकारके अनिवार्य विलयकी ओर जानेवाला निश्चित पथ है।

*

यदि सब परिस्थितियों और अवस्थाओंमें मन अचंचल बना रहे तो धैर्य अधिक आसानीसे बढ़ सकेगा।

*

कोई एक दिनमें ही अपनी प्रकृतिको नहीं जीत सकता। पर धैर्य और स्थायी संकल्प बने रहनेपर विजयका आना सुनिश्चित है।

*

विजयकी निश्चितता अनंत धैर्य प्रदान करती है और साथ ही अधिकतम बल भी।

*

शांत-स्थिर बने रहो। हमें केवल धैर्यके साथ कार्य करते जाना चाहिये, किसी चीजसे विचलित

नहीं होना चाहिये तथा अनिवार्य विजयमें अटल विश्वास बनाये रखना चाहिये।

*

अग्निको निरंतर एकसमान प्रज्वलित रखो और चुपचाप सुनिश्चित फलकी प्रतीक्षा करो।

*

सच्ची अग्नि सदा गंभीर शांतिके अंदर ही जलती है; यह सर्व-विजयिनी संकल्प-शक्तिकी अग्नि होती है।

*

गंभीर साम्यावस्थामें इसे अपने अंदर वर्द्धित होने दो।

४

प्रेम

जो प्रेम करता है केवल वही प्रेमको पहचान सकता है। जो सच्चे प्रेममें अपने-आपको दे देनेमें असमर्थ हैं, वे कभी और कहीं भी प्रेमको पहचान नहीं पायेंगे, और जितना ही प्रेम अधिक दिव्य होगा अर्थात् निःस्वार्थ होगा, उतना ही कम वे उसे पहचान पायेंगे।

*

स्वयं अपने ऊपर केंद्रीभूत होनेका अर्थ है ह्रास और मृत्यु–एकमात्र भगवान्‌पर केंद्रीभूत होनेपर ही प्राप्त होती है जीवनी-शक्ति, वृद्धि और सिद्धि।

*

एकमात्र प्रेम ही भगवान्‌की क्रियाके रहस्यको समझ सकता है और उसे आयत्त कर सकता है। मन, विशेषकर भौतिक मन, ठीक-ठीक देखनेमें असमर्थ होता है और फिर भी वह बराबर सब विषयोंपर राय कायम करना चाहता है....। पर सच पूछा जाय तो मनकी सच्ची और सरल विनम्रता ही, जो कि चैत्य पुरुषको समस्त सत्तापर राज्य करने देगी, मनुष्यको अज्ञान और अंधकारसे बचा सकती है।

*

एकमात्र भागवत कृपाके लिये ही प्रार्थना करनी चाहिये—यदि न्याय-शक्ति कार्य करे तो बहुत कम ही लोग उसके सामने टिक सकेंगे।

*

एक ऐसी गभीर सत्य-चेतना है जिसमें सब लोग प्रेम और सामंजस्यके साथ मिल सकते हैं।

*

जैसे-जैसे चेतना, समता और प्रेम बढ़ते जायंगे वैसे-वैसे भगवान्‌का सामीप्य भी बराबर बढ़ता जायगा।

*

मेरी अनवरत मधुर उपस्थितिके इस बोधको सदा बनाये रखो और सब कुछ ठीक हो जायगा।

*

मनुष्यका केंद्र है चैत्य पुरुष जो कि अंतर्यामी भगवान्‌का निवास-स्थान है। एकीकरणका मतलब है सत्ताके सभी भागों (मन, प्राण और शरीर) का इस केंद्रके चारों ओर सुसंगठित और सामंजस्यपूर्ण हो जाना जिससे सत्ताकी सभी क्रियाएं अंतर्यामी भगवान्‌की इच्छाकी ठीक-ठीक अभिव्यक्ति हो जायं।

*

ईर्ष्याका उद्‌गम है मनकी संकीर्णता और हृदयकी दुर्बलता। बड़े दुःखकी बात है कि इतने लोग इससे आक्रांत होते रहते हैं।

*

प्राणगत संबंध बराबर ही खतरनाक होते हैं।

*

प्राणका भगवान्के प्रति पूर्ण, निरपेक्ष आत्म-निवेदन ही एकमात्र समाधान है।

५

तुम और दूसरे

निश्चय ही हमें शांति और सामंजस्यकी बराबर कामना करनी चाहिये और यथाशक्ति उसके लिये कार्य भी करना चाहिये–परंतु उसके लिये कार्य करने-का सबसे उत्तम क्षेत्र अपने अंदर ही होता है।

*

दूसरे लोगोंकी प्रतिक्रियाओंके विषयमें–चाहे वे कितनी ही दुःखदायी क्यों न हों–चिंता मत करो–

प्राण-सत्ता सर्वत्र और प्रत्येक व्यक्तिमें अपवित्रताओं-से भरी हुई है और भौतिक सत्ता अचेतनतासे। इन दो अपूर्णताओंको दूर करना ही होगा, चाहे इसमें कितना ही लंबा समय क्यों न लगे। हमें इसके लिये केवल धैर्य और साहसके साथ काम करते जाना होगा।

*

दूसरे जो कुछ करते या सोचते या कहते हैं उससे आहत होना बराबर ही कमजोरीका चिह्न है और इस बातका सबूत है कि समूची सत्ता अभीतक एकांत भावसे भगवान्‌की ओर नहीं मुड़ी है, एकमात्र दिव्य प्रभावके अधीन नहीं आ गयी है। ऐसी स्थितिमें हम प्रेम, सहनशीलता, समझदारी, धैर्य आदिसे बने दिव्य वातावरणको साथ रखनेके बदले

अपने अहंकारको दूसरोंके अहंकारके उत्तरमें प्रसारित करते हैं, जिसमें कठोरता और आहत भावनाएं होती हैं और इस कारण विरोध और बढ़ जाता है। अहंकार यह कभी नहीं समझता कि भगवान् विभिन्न व्यक्तियोंमें विभिन्न प्रकारकी क्रियाएं करते हैं तथा अपने अहंकारपूर्ण दृष्टिकोणसे सभी बातोंका विचार करना भारी भूल है। इसलिये विरोध बढ़ जाना अनिवार्य है। हम लोग उत्तेजित और असहिष्णु होकर जो कुछ करते हैं वह कभी दिव्य नहीं हो सकता, क्योंकि भगवान् केवल दिव्य शांति और सामंजस्यके अंदर कार्य करते हैं।

*

चिंता मत करो, न अधीर ही होओ–सब प्रकारका विरोध दूर हो जायगा। पर इसके लिये एक

सुदृढ़ प्रकाशपूर्ण चेतनाका सच्चा आधार होना चाहिये जिसमें अहंकारकी क्रियाके लिये कोई स्थान न रहे।

*

जब लोग वास्तवमें अपनी चेतनामें परिवर्तन लाना चाहते हैं, तभी उनके कर्म भी परिवर्तित होते हैं।

*

मैं जानती हूं कि लोग जल्दबाज और नासमझ हैं। पर जबतक उनकी चेतना ही नहीं बदलती तबतक भला हम उनसे और क्या आशा कर सकते हैं?

*

क्या सब मनुष्योंमें ही मिथ्या सर्वदा सत्यके साथ मिला हुआ नहीं होता?

*

हां, हमें अपनी चेतनाको उच्चतर सत्तामें स्थापित करना चाहिये और जो कुछ हम करें उसे वहांसे करना चाहिये; नीची, अंधी और स्वार्थपूर्ण गतिविधियों और प्रतिक्रियाओंको कार्य बिगाड़ने नहीं देना चाहिये।

*

यदि कोई अपनी पसंदोंसे एकदम अलग होकर, किसी भी चीजको व्यक्तिगत प्रश्न बनाये बिना कार्य-के हितको देखनेमें समर्थ हो सके तो फिर अधिकांश कठिनाइयां हल हो जायंगी।

*

यदि कार्यको लोग अपना कार्य कहना छोड़ सकते तो बहुत-सी कठिनाइयां दूर हो जातीं।

*

मैं चाहती हूं कि तुम्हारे मनमें शांति आये और साथ ही स्थिर, धीर ज्ञान भी जो हमें जल्दबाजीके साथ निर्णय करने या फैसला देनेसे रोकता है।

*

जो मन जितना ही अधिक अज्ञानी होता है वह उतना ही अधिक आसानीसे प्रत्येक चीजके बारेमें, जिसे कि वह नहीं जानता अथवा समझनेमें असमर्थ होता है, अपनी राय बना लेता है।

*

स्पष्ट रूपमें समझने और देखनेके लिये तथा समुचित रूपमें कार्य करनेके लिये एक बहुत ही धीर-स्थिर मस्तिष्कका होना अनिवार्य है।

*

हमें बराबर ही अपने उस बड़े आदर्श और कार्य-को मनमें बनाये रखना चाहिये जिसे हमें सिद्ध करना है, ताकि हम छोटी-छोटी ब्योरेकी बातोंको, उन तुच्छ बातोंको बहुत अधिक महत्त्व न दें जिन्हें हमारा ध्यान आकर्षित नहीं करना चाहिये। इन तुच्छ बातोंको आने और चले जाने दो, जैसे कि आकाशमें छोटे-छोटे बादल आते और चले जाते हैं, पर उनसे सुन्दर मौसममें जरा भी विकार नहीं आता।

*

हां, ये सब झगड़े बड़े दुःखदायी हैं—ये भीषण रूपसे कार्यमें बाधा डालते हैं और प्रत्येक चीजको ही अधिक कठिन बना देते हैं।

*

दूसरोंकी मूर्खताका तुम ख्याल मत करो, अपनी मूर्खताका ही ख्याल काफी है।

*

जब तुम दूसरोंके साथ बातचीत करो तब अपने चारों ओर सजीव उपस्थिति और संरक्षण बनाये रखनेके लिये बराबर सावधान रहो और यथासंभव कम बोलो।

६

कठिनाइयां और सहायता

कठिनाइयां सदा ही किसी प्रतिरोधके कारण पैदा होती हैं—सत्ताका कोई भाग या कई भाग, उन-पर जो शक्ति, चेतना और ज्योति डाली जाती है, उसे ग्रहण करना अस्वीकार करते हैं और भागवत प्रभावके विरुद्ध विद्रोह करते हैं। विरला ही कोई इन कठिनाइयोंमेंसे एक अथवा दूसरीका सामना किये बिना संपूर्ण रूपसे भागवत इच्छाके प्रति आत्मसमर्पण

कर पाता है। परंतु अपनी अभीप्साको अटल बनाये रखना और पूर्ण सच्चाईके साथ आत्मनिरीक्षण करते रहना सभी बाधाओंको पार करनेका सुनिश्चित पथ है।

*

निश्चय ही ये सब कष्ट कहींपर कोई प्रतिरोध होनेसे ही आते हैं, किसी ऐसी चीजके कारण आते हैं जो रूपांतरके कार्यका विरोध करती है।

*

भगवान्‌की सहायताके बिना साधना करना किसीके लिये संभव नहीं हो सकता। पर सहायता बराबर विद्यमान रहती है।

*

भगवत्कृपा बराबर ही कार्य करनेके लिये तैयार है; पर तुम्हें इसे कार्य करनेका मौका देना चाहिये और इसके कार्यका विरोध नहीं करना चाहिये। एकमात्र आवश्यक शर्त्त है श्रद्धा। जब तुम अपनेको आक्रांत अनुभव करो तब सहायताके लिये श्रीअरविन्दको और मुझे पुकारो। अगर तुम्हारी पुकार सच्ची होगी (कहनेका तात्पर्य यह कि अगर तुम सच्चे दिलसे रोगमुक्त होना चाहोगे) तो तुम्हारी पुकारका उत्तर अवश्य आयेगा और कृपा-शक्ति तुम्हें रोगमुक्त कर देगी।

*

यह व्यर्थकी बात है कि सहायता तो मांगी जाय परंतु विश्वास न रखा जाय। इसके विपरीत, भरोसा होनेपर प्रत्येक बात कितनी आसान हो जाती है।

*

निःसंदेह, मैं विश्वास करती हूं कि जब निश्चेतना जीत ली जायगी तब कोई शर्त आवश्यक न होगी। सब कुछ भागवत कृपाशक्तिके सहज निर्णयसे निर्धारित हुआ करेगा।

*

सहायताके लिये अभीप्सा करना और पुकारना एकदम अनिवार्य है।

*

निश्चय ही पुकारने और खींचनेमें बड़ा अंतर है—सहायताके लिये तुम सर्वदा पुकार सकते हो और पुकारना ही चाहिये और उसके बाद उत्तर आयेगा ग्रहण करने और आत्मसात् करनेकी तुम्हारी क्षमता-के अनुपातमें। खींचना तो एक स्वार्थपूर्ण क्रिया है जो तुम्हारी क्षमताकी अपेक्षा कहीं अधिक मात्रामें

शक्तियोंको उतार सकती हैं और इस तरह वे हानिकारक हो सकती हैं।

*

उद्‌घाटनका अर्थ है शक्ति और प्रभावको ग्रहण करने तथा उन्नतिके लिये उनका उपयोग करनेकी इच्छा; दिव्य चेतनाके संस्पर्शमें बने रहनेकी सतत अभीप्सा; यह विश्वास कि शक्ति और चेतना बराबर ही तुम्हारे साथ, तुम्हारे चारों ओर, तुम्हारे भीतर हैं, और तुम्हें बस इतना ही करना है कि तुम उन्हें ग्रहण करनेमें किसी चीजको बाधा न डालने दो।

*

यह ठीक है कि भागवत संरक्षण सदा ही हमारे

चारों ओर विद्यमान है पर यह पूर्ण रूपसे केवल तभी कार्य करता है जब हमारे सामने ऐसी विपत्तियां आ उपस्थित होती हैं जो अनिवार्य होती हैं; कहने-का तात्पर्य, जब हम भगवान्‌के लिये काम कर रहे होते हैं और अगर एकाएक हमारे मार्गमें विपत्तियां उठ खड़ी होती हैं तो फिर संरक्षण अधिक सफल होता है। पर कोई ऐसा कार्य आरंभ करना जो किसी तरह अनिवार्य तो हो ही नहीं बल्कि निश्चित रूपसे उपयोगी भी न हो और फिर अत्यंत आपत्-संकुल हो, तो ऐसी हालतमें यह आशा रखना कि भागवत संरक्षण सभी संभाव्य परिणामोंसे हमारी रक्षा करेगा—भगवान्‌को चुनौती देनेके समान है जिसे भगवान् कभी स्वीकार नहीं करेंगे।

*

जब हम पूर्ण रूपसे अचंचल और निर्मल बने रहते हैं तब कुछ भी हानिकारक नहीं घटित हो सकता।

*

भय सदा ही बड़ा बुरा सलाहकार होता है।

*

एक बार जब मिथ्यापन जीत लिया जायेगा तब सभी कठिनाइयां दूर हो जायेंगी।

*

वास्तवमें अत्यधिक अज्ञान ही वह चीज है जो हमारी सत्तासे अंधकार और विनाशकी शक्तियोंके सुझावोंका प्रत्युत्तर दिलाती है। अगर हमारे अंदर भगवान्‌की अनंत करुणाके प्रति कृतज्ञताका सच्चा

भाव हो तो हम ऐसे खतरोंसे अवश्य बच जायेंगे।

*

विजय अवश्य होगी—इस निश्चयताके साथ हम सभी भ्रांत सुझावों और विरोधी आक्रमणोंका मुकाबला धीरतापूर्वक कर सकते हैं।

*

हमें विरोधी शक्तियोंको दुष्टता करनेका कभी मौका नहीं देना चाहिये—वे तनिक-सी अचेतनतासे भी अपना मतलब पूरा कर लेती हैं।

*

सच्चा आत्मदान ही समस्त कठिनाइयों और विपत्तियोंसे हमारी रक्षा करता है।

*

हां, मेरे बच्चे, यह बिलकुल ठीक है कि भगवान् ही एकमात्र आश्रय हैं–उनके साथ रहनेमें ही पूर्ण सुरक्षा है।

७

भविष्य

जो योगका अभ्यास करते हैं उनके लिये जन्म-कुंडलीका कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि योगके द्वारा जो प्रभाव कार्य करता है वह नक्षत्रोंके प्रभावसे बहुत अधिक शक्तिशाली होता है।

★

अभिव्यक्तिका कार्य सभी कठिनाइयोंको पार कर जायेगा, क्योंकि अभिव्यक्तिका अर्थ ही है समस्त कठिनाइयोंको पार कर जाना ॥ इति ॥

मूल्य छः आना